ओ३म्

वेद में वैद्यशास्त्र

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

लाहौर.

प्रकाशक

मंत्री—साहित्यपरिषद्, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

सं० १९१४ सं० १९७०

प्रथम वार १०००] मूल्य -)॥

पञ्जाब प्रिंटिंङ्ग वर्क्स लाहौर में छपा।

ॐ

वेद में वैद्यशास्त्र ॥

" वेद सर्व सत्यविद्याओं का मूल पुस्तक है " " वेद में सर्व विद्यायें बीजरूप से मिलतीं हैं " " वेद का पठनपाठन, श्रवण श्रावण करना आर्य्यों का परम धर्म है " इत्यादि उपदेश हम ऋषि मुख से श्रवण करते आये हैं और उस आप्तवाक्य के अनुसार हमारा विश्वास भी है. परन्तु कौन कौन से शास्त्र किस किस प्रकार से वेद में उपलब्ध होते हैं इसका निश्चित पता अबतक लगा नहीं. तथा इन शास्त्रों की खोज में वैदिक विद्वानों के परिश्रम भी जैसे होने चाहिये वैसे इस समय तक नहीं हुए हैं यह बड़ी शोक की बात है।

मेरा परिश्रम वेद विषय में बहुत ही अल्प है. परन्तु जो कुछ परिश्रम वेद विषय में मैंने किया हुवा है उससे मेरा निश्चित मत यह हुवा है कि वेद विविध ज्ञान का एक भंडार है. इस वेद में मुख्य तथा अध्यात्म शास्त्र उपलब्ध होता है तथा इसके साधक कई अन्य

शास्त्र प्रतीत होते हैं. जिनमें समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, वैद्यशास्त्र, दण्डनीतिशास्त्र, राजविद्याशास्त्र ई० प्रमुख है।

गतवर्ष मैंने आपके सन्मुख "रोगजन्तु शास्त्र" विषय पर छोटा सा प्रबंध पढ़ा था. यह रोगजंतु शास्त्र वैद्यशास्त्र के अंतर्गत एक भाग है. इस वैद्य शास्त्र के मंत्रों का अभ्यास करते करते इस शास्त्र की एक निश्चित व्यवस्था है ऐसा मेरे ध्यान में आने लगा है. परंतु इसकी पूर्णव्यवस्था मैंने इस समय तक नहीं की है. इस शास्त्र के थोड़े से मंत्र मैं आपके सन्मुख रखना चाहता हूं. जिससे आपके मन में वैदिक वैद्यशास्त्र का गौरव निःसंदेह आ जायगा।

मेरा विश्वास है कि जो मंत्र वेद में वैद्यशास्त्र विषयक आते हैं उन्हीं मंत्रों के आश्रम पर हमारा आर्य-वैद्य-शास्त्र बना हुवा है. अर्थात् आर्य वैद्यशास्त्र का बीज वेद मंत्रों में अवश्य मिलता है. जिसकी अंशतः गवाही सुश्रुतकार देते हैं :—

इह खल्वायुर्वेदोनाम यदुपांगमथर्ववेदस्य-
अनुत्पाद्यैव प्रजाः .... कृतवान् स्वयंभूः ॥

सुश्रुत० सूत्र० अ० १.

"आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है" यही उपवेद है. परंतु शोक है कि यह उपवेद इस समय नहीं मिलता है. वेद से आयुर्वेद नामक उपवेद निर्माण हुवा. इस आयुर्वेद से प्राचीन वैद्यशास्त्र जो

चरक सुश्रुतादि नाम से प्रसिद्ध है, उत्पन्न होगये. अर्थात् वेद में वैद्यशास्त्र निकल आया. वेद में जो वैद्यशास्त्र का बीज था वही वैद्य ग्रंथों के रूप से बृहदाकार परिणत होगया है. अस्तु अब हम प्रस्तुत निबंध का विचार करते हैं. वैद्यशास्त्र के बीजभूत मंत्रों का विचार करने के पहिले वैद्य के लक्षण वेद ने कहे हैं वह देखने चाहीये।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः॥

ऋ० १.० । ९७॥

भावार्थ—"जिस प्रकार क्षत्रिय युद्ध में एकत्रित होते हैं उस प्रकार जिसके पास सर्व औषधियां (रोगों के साथ होने वाले युद्ध में) एकत्रित होतीं हैं. उस विद्वान का नाम भिषग-वैद्य-होता है. और वही विद्वान् राक्षसों, रोग बीजों का हनन करने हारा तथा रोगों का दूर कर्ता होता है" इस मंत्र को देखने से वैद्य के निम्न लिखित लक्षण प्रतीत होते हैं :-

(१) विप्रः (विशेषण प्राज्ञः)—वैद्य विद्वान, ज्ञान संपन्न, अर्थात सांगोपांग वैद्यशास्त्र जानने वाला होना चाहिये।

(२) औषधि संग्राहकः तथा औषधि योजकः— सम्पूर्ण औषधियों का संग्रह करने वाला तथा उन औषधियों की उत्तमता से योजना करने वाला।

(३) **रक्षो-हा**—(रक्षसां हन्ता) रोग जन्तुओं की यथोचित परीक्षा करके उनका हनन करने वाला।

(४) **अमीव-चातनः**—(अमीवाः-रोगाः तान् चातयति दूरी करोति)—रोगों को औषधियोजना के द्वारा दूर करने वाला।

इन चतुर्लक्षण युक्त जो होता है वह वैद्य कहलाता है-(१) शास्त्र का अभ्यास (२) औषधि संग्रह (३) रोग बीज दूरीकरण-समर्थता (४) तथा रोग विनाश समर्थता-वह चतुर्लक्षण युक्त वैद्य होता है, इन लक्षणों का विचार करने से आज कल के इश्तिहारी वैद्यों के व्यवहार का यथोचित खण्डन होगया है। अर्थात् वैद्य का धंदा हरएक ने नहीं करना चाहिये परन्तु जो उक्त लक्षण युक्त हो वह ही वैद्यक क्रिया करे अन्य नहीं।

इस मन्त्र से कितना उत्तम उपदेश मिलता है! यदि लोक इस उपदेश की ओर ध्यान देंगे तो बहुत लाभ होसकता है। अब शरीर विज्ञान के विषय में एक मन्त्र देखियेः—

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि॥

अथर्व० ६।१०।२

भावार्थ—"मनुष्य के शरीर में सैंकड़ों नसें तथा नाड़ियां हैं। प्रति अवयव में इनकी स्थिति है। इन सब धमनियों से विष को हम बाहिर निकालेंगे"।

इस मन्त्र में दो बातें स्पष्ट कहीं हैं। (१) एक यह है कि शरीर के प्रति अवयव में अनेक नाड़ियां हैं। तथा (२) दूसरी बात यह है कि उन नाड़ियों में विष संचार होकर नाना व्याधियां होती हैं। इस कारण उन नाड़ियों को सदा निर्विष अर्थात शुद्ध रखना चाहिये। नाड़ियों की निर्विषता के ऊपर मनुष्य का स्वास्थ्य अवलम्बित है, यह बात यहां सुस्पष्ट प्रतीत होती है। धमनियों के अन्दर विष संचारित होकर नाना व्याधियां होतीं है उनके कई नाम अगले मन्त्र में दिये हैं-देखिये:—

अंगभेदो अंगज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तत वाचा साढः परस्तराम् ॥

अथर्व० ९। ३। ९

भावार्थ—"आंग दुखना, (२) शरीर का ज्वर, (३) हृदय की व्यथा, (४) क्षयरोग यह सब व्याधियां एकदम नष्ट होजायगीं, जिस प्रकार श्येन झटपट भागता है।

इस मन्त्र में चार व्याधियों का परिगणन किया है। व्याधियों की अन्य परिगणना भी अन्य मन्त्रों में आई है।

(१) **क्षेत्रिय व्याधि**—जो व्याधि माता पिता के रजवीर्य के साथ संतान में आते हैं उनको क्षेत्रिय व्याधि बोलते हैं। यह क्षेत्रिय व्याधि बड़े दुस्तर होते हैं। इनका औषधोपचार अथर्ववेद में बहुत स्थान पर आया है।

(२) **निर्ऋति**—अनियमित वर्तन, व्यवहार, करने से जो व्याधियां उत्पन्न होतीं हं उनको निर्ऋति बोलते हैं ।

(३) **आगः**—फैलने वाली व्याधि ।

(४) **दुरितम्**—(दुः+इतं) सदोष पदार्थ शरीर में प्रविष्ट होने से जो राग उत्पन्न होते हैं उन व्याधियों के बीज का नाम दुरित ह, इसी को विष भी कहते हैं ।

(५) **विष**—(वि+ष) जिस से शरीर की समता नष्ट होती है उसको विष कहते हैं, शरीर के अंदर सप्त धातुओं की साम्यावस्था जिस समय होती है उस समय उसको आरोग्य कहते हैं, तथा जिस समय प्रतिलोमी पदार्थ अन्दर जाता है और सप्त धातुओं के अन्दर विषमता उत्पन्न करता है उस समय व्याधि उत्पन्न होते हैं, यह विषमता जिस से होती है उसको विष कहा हुवा है। सूर्य्य किरणों के द्वारा यह विष दूर होता है ऐसा आगामी मंत्रों में कहा हुवा हैः—

ये अंगानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां ते परिमंससः ।
अनूकावर्षणीरुहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशत् ॥२१॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च ये विदुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशत् ॥२२॥

अथर्व० ६।८। १६

भावार्थ—"जिस से अवयवों के अन्दर मद उत्पन्न होता है। और नाना प्रकार के व्याधि होते हैं वह विष होता है। पांव, जानु, श्रोणी, पेट, कमर, मस्तक, कपाल हृदय तथा अन्य अवयव इनके अन्दर जो विष रहता है उसका नाश उदय को प्राप्त हुवा २ सूर्य्य अपने किरणों से करता है। अर्थात प्रातःकाल के सूर्य्य किरणों से अनेक व्याधी नाश होते हैं"।

इस मन्त्र में विष से व्याधियों का उत्पन्न होना तथा सूर्य्य किरणों द्वारा विष का नाश होना स्पष्ट लिखा है। सूर्य्य किरण विष दूर करके आरोग्य का सम्वर्धन करने हारे हैं। इस कारण सूर्य्य का नाम "शोचिष्+केश" ऐसा वेद में आया है। जिस से किरणों का शुद्धता करने का धर्म स्पष्ट पाया जाता है। सूर्य्य के विषय में और देखियेः—

अपचितः प्रपतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्य्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोपोच्छतु॥

अथर्व० ६। ८३। ३५

भावार्थ-"जिस प्रकार गरुड़ दौड़ जाता है उसी प्रकार स्फोटक व्याधि दूर चली जायगी, इसके लिये सूर्य औषध बनावे तथा चंद्रमा अपने प्रकाश से उसका नाश करे।

इस मंत्र में सूर्य औषध बनाता है ऐसा स्पष्ट कहा है. सूर्य इस विश्व में प्राणरूप है. और अपने किरणों के द्वारा सर्व विश्व का स्वास्थ्य उत्तम रखता है. परंतु मनुष्य ऐसे हैं कि वे स्वयं अंधेरे

स्थान में रहकर सूर्य के प्राणशक्ति सें वंचित रहते हैं और अनारोग्य में फंसते हैं. इस मंत्र से पता लगता है कि मकान इस प्रकार के बांधने चाहिये कि जिनमें सूर्य प्रकाश विपुल आवे तथा उनके द्वार आयुरारोग्य वृद्धि को प्राप्त हो ।

सूर्य किरणों द्वारा जो चिकित्सा होती है वह **रश्मिस्नान** नाम से प्रसिद्ध है. इस रश्मिस्नान से अनेक व्याधियां दूर होती हैं. अब रश्मिचिकित्सा को यहां छोड़कर वायु चिकित्सा के विषय में थोड़ा सा देखेंगे :–

द्वाविमौ वात आसिंधोरा परावतः ॥
दक्षं ते अन्य आवातु परोऽन्यो वातु यद्रपः ॥२॥
आवात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ॥
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥

ऋ० १०।१३७

भावार्थ–"दो वायु है. एक समुद्र के ऊपर से आता है और दूसरा जमीन के ऊपर से चलता है. जो समुद्र के ऊपर से जमीन पर आता है वह बल को लाता है तथा जो जमीन के ऊपर से आता है वह दोषों को साथ ले जाता है. बलवान वायु औषध ले आवे तथा अन्य वायु दोषों को दूर करे. वायु संपूर्ण औषधियों का केन्द्र है. इस कारण उनको देवदूत कहते हैं"

इस मंत्र में वायुचिकित्सा का मूल है. समुद्र के ऊपर से शुद्ध वायु आता है वह बल देता है, आरोग्य बढ़ाता है, अर्थात यह वायु

संपूर्ण औषधियों को अपने साथ लाता है. शुद्ध वायु ऐसा ही उत्तम होता है. इसलिये शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये. शहरों की तथा गृहों की रचना ऐसी होनी चाहिये कि उसमें ऐसा शुद्ध वायु सदैव आता रहे.

मनुष्यों के स्थानों पर से जो वायु आता है वह नाना प्रकार के रोग बीजों को साथ लाता है, इस कारण वह लाभदायक नहीं होता है।

मनुष्य के शरीर में भी श्वास तथा उच्छ्वास ऐसे दो वायु कार्य करते हैं. जो शुद्ध वायु अंदर जाता है वह बल उत्पन्न करता है. तथा जो अंदर से अशुद्ध वायु बाहर निकलता है वह अशुद्धी ले जाता है. सब शरीर का स्वास्थ्य इन वायुओं पर अवलंबित है।

योगशास्त्रांतर्गत प्राणायाम की क्रिया तथा प्रक्रिया इसी वायु के साथ संबद्ध हैं योग्य प्रकार से प्राणायाम करने से अनेक व्याधियां दूर होतीं हैं. यह बात अंतः शुद्धी के विषय में हुई. बाह्य शरीर के अनेक रोग भी विवक्षित प्रकार के वायु सेवनादि से ठीक होते हैं. नित्य शुद्ध वायु सेवन करने वाले महोदय को प्रायः रोग होते ही नहीं. यह अनुभव है वेद भी वही बात स्पष्टता से बतलाता है।

उक्त मंत्रों में वायु के लिये "विश्वभेषजः" यह शब्द आया है यही शब्द सब वायुविद्या के प्रकाश का केंद्र है. इसी शब्द ने वायु चिकित्सा के विषय में सब कुछ कहा है. वायु अर्थात शुद्ध वायु संपूर्ण औषधियों का तत्व है, संपूर्ण औषधि सेवन का फल शुद्ध वायु के सेवन से प्राप्त होता है. अर्थात् औषधियों का कार्य

केवल अकेला वायु ही कर सकता है. किस व्याधि के लिये किस प्रकार वायु सेवन करना चाहिये यह बात अन्य प्रकार से विदित होसकती है. अस्तु. इतना वायु चिकित्सा के विषय में कहना पर्याप्त है. अब जलचिकित्सा के विषय में थोड़ा सा देखीये :-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ १ ॥
इदमापः प्रवहत यत्किंच दुरितं मयि।
यद्वाऽहमभि दुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २ ॥

ऋ० १।२।१२

आपो हि ष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

ऋ० ७।६।५

भावार्थ—"पानी के अंदर संपूर्ण औषधियां विद्यमान हैं जिस प्रकार अग्नि सब प्रकार से कल्याण कर्त्ता है उसी प्रकार जल भी संपूर्ण औषधिरूप है. मेरे अंदर रोगबीज रूपी विष, जो कुछ गया हो उसको यह जल बाहर ले आवे. जो कुछ अपथ्य मेरे

से होगया हो वह इस जल से ठीक हो" "जल अत्यंत आरोग्यदायक है तथा बल देने वाला है. जल अत्यंत कल्याणरूपी है. वह हमारा हित करने वाला होवे"

यह सारांशरूप से उक्त मंत्रों का आशय है. उक्त मंत्रों में जल के लिये जो विशेष शब्द आये हैं उनका अर्थ देखीये :—

(१) **विश्व-भेषजीः** = (सर्व-भेषजीः) = जिस में संपूर्ण औषधियां अर्थात् संपूर्ण औषधियों का सत्व रहता है, ऐसा पदार्थ जल है. अर्थात् जल के यथा योग्य उपयोग से औषधियों के योग्य सेवन का फल प्राप्त हो सकता है.

(२) **दुरित प्रवाहक** = (विष-विरेचक) = शरीर में गये हुये रोगोत्पादक विष को दूर करने वाला जल है अर्थात् जल के योग्य सेवन से शरीर निर्विष होकर मनुष्य निरोग होता है।

(३) **मयो-भुवः आपः** = उदक कल्याण करने वाला है हित कारक, आरोग्य वर्धक, सुखदायक है।

(४) **शिव-तमः रसः** = जल यह एक अत्यन्त आरोग्य उत्पन्न करने हारा कल्याणमय अर्क है।

उक्त मंत्रों में यह शब्द हैं कि जो जल का प्रभाव वर्णन कर रहे हैं, जिनसे जल चिकित्सा प्रकट होती है इस चिकित्सा के विषय में अगले मंत्र देखीये: —

जलाषेणाभिषिंचत जलाषेणोपासिञ्चत ॥
जलाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीव से ॥२॥
अथर्व ६।५७।२

भावार्थ—"जल से आभिषेंचिन करो, जल से उपासिंचन करो, जल ही बड़ा भारी औषध है, उसी के सेवन से जीवन सुख-मय होता है।

इस मंत्र में स्पष्टतया कहा है कि जल के आभिषेचन तथा उपसिंचन से जीवित सुखमय हो सकता है, उक्त दो प्रकार जल के उपयोग करने के हैं, उक्त प्रकार से उक्त उपयोग करने से संपूर्ण रोग दूर हो सकते हैं, कारण यह है कि "जलषं उग्रं भेषजं" जल अत्यंत तीव्र औषधी है, पानी बड़ी तेज दवा है, जैसा कि इस मंत्र में कहा है उस से और अधिक जल चिकित्सा विषय में क्या कहा जा सकता है।

सूर्यकिरण चिकित्सा, वायु चिकित्सा, जल चिकित्सा इन तीन चिकित्साओं के विषय में थोड़ा सा दिग्दर्शन इस समय तक किया है, निबंध का विस्तार बहुत न हो इस लिये हर एक विषय में अत्यंत संक्षेप से ही दिखाया जाता है।

उक्त जल चिकित्सा के मंत्रों में अग्नि के लिये 'विश्व-शं-भुवं' ऐसा विशिष्ट शब्द आया है।

जिस का अर्थ—"संपूर्ण कल्याणों का उत्पादक" ऐसा है. अग्नि भी आरोग्य संवर्धक है ऐसा इस शब्द से प्रतीत होता है. जिस कारण अग्नी का उपयोग हवन में होता है. "ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते। ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते।" इस प्रकार के ब्राह्मण वचन बताते हैं कि रोग बीजों को हटाने के

अर्थ यज्ञ का उपयोग होता है. श्री-स्वा० दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी भाष्य भूमिका में यह विषय स्पष्ट किया है इस लिये आग्न के विषय में अधिक लिखने का प्रयोजन नहीं है. अब औषधि चिकित्सा के विषय में संक्षेप से लिखना है:—

प्रथम "औषधि" शब्द का अर्थ देखने की अत्यन्त आवश्यकता है. औषधि शब्द में दो शब्द हैं और उन का अर्थ नीचे दिया हुवा है:—

ओष (दोष)—दोष, मल, रोग बीज.

धी—धोने वाली, धोकर दूर करने वाली.

'अर्थात् दोषों को धोने वाली, दोषों को दूर करने वाली जो चीज होती है उस को औषधी कहते हैं. इसी कारण औषधि बनस्पातियों को औषधी कहते हैं. औषधियां अनंत प्रकार की हैं. वेद में भी अनेक प्रकार के औषधियों का वर्णन है. उन वर्णनों में से कुछ औषधियों का वर्णन नीचे दिया हुवा है. प्रथमतः सामान्य वर्णन अगले मंत्रों में दिया हुवा है:—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥ यदिमा वाजयन्नह मोषधीर्हस्त आदधे। आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥१०॥

ऋ० ८।४।१०।१।

भावार्थ—"मनुष्यों के पहिले तीन युग औषधियां उत्पन्न हुवीं थीं, और इन औषधियों के सात सौ जातियां हैं औषधी को बलवती करके सेवन करने से रोगका बीज नष्ट होता है"

इन मन्त्रों में तीन बातें कहीं हुवीं हैं [१] औषधियों का तीन युग प्रथम उत्पन्न होता, [२] औषधियों की सातसौ जातियों का अस्तित्व, [३] औषधियों के सेवन से रोगबीजों का नाश होना, इस तीसरी बात से ही वैद्य शास्त्र की उत्पत्ति है। इन मन्त्रों में जो बात कही है बहुत ही विचार पूर्वक कही है, केवल औषधी सेवन से व्याधी का नाश नहीं होता है, प्रत्युत औषधी को वीर्यवती बना कर सेवन करने से व्याधियां दूर होतीं हैं, औषधी को वीर्यवती बनाने का जो प्रकार होता है वही उसकी विधि हैं, इस लिये विधियुक्त औषध बनाकर उसका यथायोग्य सेवन करना चाहिये यह तात्पर्य ध्यान में धरने योग्य है अब वेद में किस प्रकार औषधियों का वर्णन है वह देखिये:—

पिप्पली औषधि

पिप्पलीः क्षिप्त भेषजी उतातिविद्धभेषजी।
ता देवा समकल्पयान्नियं जीवातवा अलम् ॥१॥
पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवावहै न स रिष्याति पुरुषः ॥२॥
वातीकृतस्य भेषजीं मथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥
अ० ६।१०।१०६

भावार्थ—"पिप्पली औषधी उन्मादव्याधी पर तथा अत्यन्त पुराणे रोगपर चलती है. पिप्पली की प्रतिज्ञा है कि "जो पुरुष हमारा सेवन करेगा उसका नाश नहीं होगा" पिप्पली औषधि वात विकार तथा उन्माद विकार पर अच्छी "औषधि है."

कैसा स्पष्ट शब्दों में औषधी का वर्णन आया है कोई संदिग्ध बात नहीं साधारणतः पिप्पली का उपयोग सर्व साधारण व्याधियों पर किया जा सकता है. अर्थात् यह एक ही औषधि विविध व्याधियों पर विविध प्रकार से चलती है. यह इस औषधी का सर्व साधारण उपयोग कहा हुआ है इस सूचना को ध्यान में रख कर वैद्य पिप्पली का उपयोग कर सकते हैं. इस औषधि का विशेष उपयोग भी स्पष्टता के साथ किया है. कि उन्नमाद तथा वातरोग तथा पुराणे रोगों पर इनके सेवन से लाभ हो सकता है. अस्तु इस प्रकार कई वनस्पतियों का वर्णन मंत्रों में आया है. उन में से थोड़ासा नमूना आगे दिया हुआ है:—

श्यामा औषधि।

कीलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२॥

अथर्व १।२३

आसुरी चक्रे प्रथमेदं कीलासभेषजमिदं कीलास नाशनम्। अनीनशत् कीलासं सरूपाम करत् त्वचम्

॥ ३ ॥ श्यामा सरूपं करणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमूषु प्रसादय पुना रूपाणि कल्पय ॥४॥

अथर्व १।२४

भावार्थ—"रामा, कृष्णा, आसिक्नी, श्यामा यह औषधीयां है जिन के उपयोग से कीलास (श्वेत कुष्ट) तथा पलित (श्वेत बिन्दु) बिलकुल नाश होता है. निः शेष होता है. त्वचा का रंग ठीक करने वाली श्यामा वनस्पति है. जिसके सेवन से चमड़ी का रंग पुनः पूर्ववत् होता है."

श्वेत कुष्ट के ऊपर इन चार वनस्पातियों का उपयोग करके देखना चाहिये. अनुभव, विचार तथा संशोधन करने से निश्चित विधिका पता लग सकता है. वेदने सूचना दी हुवी है अब आर्य वैद्यों का काम है कि इनको यथा योग्य रीती से उपयोग में लाकर लोकों को व्याधी से दूर करना.

अपा मार्ग ।

क्षुधामारं तृष्णामारं तथा अनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ॥१॥
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥२॥

अ० ६।६।६७।

भावार्थ—“क्षुधा, तृष्णा तथा अनपत्यता इन के ऊपर अपामार्ग औषधि का उपयोग होता है. संपूर्ण औषधियों में अपामार्ग औषधी से ही उक्त कार्य विशेष प्रकार से होता है.”

क्षुधा तथा तृष्णा संबंधी सर्व विकार तथा अनपत्यता संबंधी सर्व व्याधि इस औषधी के सेवन से दूर होते हैं।

केशवर्धन के उपाय का वर्णन अथर्व-वेद ६।१३७ में आया है तथा क्लीवत्वनाशन अथर्व-वेद ६।१३८ में आया है इस विषय के मंत्र विस्तार भय से यहां उधृत नहीं किये हैं. अब एक ही बनस्पति का उल्लेख करके इस विषय की समाप्त करनी है:—

संते मज्जा मज्जा भवतु समु ते परुषा परुः
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यमपि रोहतु ॥
मज्जा २ संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥ ४ ॥
यदि कर्तं पतित्वासंशश्रे यदि वाऽश्मा प्रहतो जघान।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि संदधत्परुषा परुः ॥ ७ ॥

अथर्व० ४।१२५

भावार्थ—“रोहिणी नामक जो बनस्पति है उस से मांसादि की शीघ्र बृद्धी होती है इस कारण शस्त्रादिकों के आघात से जो जखम होती है उस का वरण इस बनस्पति द्वारा शीघ्र ठीक होता है. मज्जा से मज्जा, मांस से मांस, चर्म से चर्म, अस्थी से अस्थी इस

बनस्पति द्वारा बढ़ता है. यदि आरि २ शास्त्र के आघात तथा पत्थर लगने से व्रण हुवा हो तो इस बनस्पति से शीघ्र ठीक होता है, जैसा की उत्तम तर्खान रथ के अंगों को शीघ्र ठीक करता है उसी प्रकार रोहिणी बनस्पति शरीर रूपी रथ को शीघ्र ठीक करती है. ”

यह रोहिणी बनस्पति का वर्णन बहुत स्पष्ट है. हर एक विद्वान वैद्य को उचित है कि इन बनस्पतियों को ठीक २ प्रकार ढूंड कर उन का उपयोग यथायोग्य करके व्याधियों को शीघ्र हटाने का यत्न किया करे।

औषधियां तैयार करने के समय वैद्यों ने औषधियों की शक्ति बढ़ाने का प्रकार भी सोचना चाहिये. औषध शतवीर्य तथा सहस्रवीर्य बन सकता है ऐसा वेद में अनेक बार आया है।

शतवीर्य—सौ गुणा अधिक शक्ति वाला तथा

सहस्र वीर्य—सहस्र गुण अधिक शक्तिवाल औषध हो सकता है।

बलवान्, बलवत्तर तथा बलवत्तम यह भी तीन प्रकार है, यह सब संशोधक तथा संग्राहक बुद्धी से देखने तथा विचारने चाहिये, इन वीर्यों का संबंध औषधियों की तेजस्विता बढ़ाने में होता है छोटे बड़े वीर्य वाला औषध व्याधी के न्यूनाधिक तीव्रता के अनुसार व्याधिग्रस्त की आयु के अनुसार तथा रोग की आयु के अनुसार न्यूनाधिक सेवन किया जा सकता है, अस्तु यहां औषधि

विषय समाप्त करके वायु शुद्ध करने वाले वृक्षों के विषय में वेद क्या कहता है यह अल्प रूप मे देखते हैं:—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखंडिनः ।
तत् परेता अप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३ ॥
यत्र वः प्रंखाः हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः
कर्कर्यः संवदान्ति ।
तत्परेता अप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृंग्यराटकी तीक्ष्णशृंगी व्यधूषत ॥

अथर्व० ४।३७ ॥

भावार्थ—"जहां अश्वत्थ, न्यग्रोध, यह महावृक्ष अपने पत्रों के साथ प्रसन्नता मे रहते हैं, अर्जुन, अघाट, कर्करी, अजशृंगी, अराटकी, तीक्ष्णशृंगी. यह वृक्ष तथा वनस्पतियां रहती हैं वहीं (अप्-सरः) पानी में संचरनेहारे विषजंतु नहीं रहते है."

"अप् सरः" शब्द पानी में संचार करने हारे जो रोगजंतु होते हैं उनका बोधक है. इन वृक्षों के कारण मलेरिया का दूर होना भी संभव है क्योंकि मलेरिया के रोगबीज भी जलाश्रयित होते हैं. जहां मलेरिया बहुत होता है वहां इन वृक्षों को लगा कर अनुभव देखने योग्य है इस प्रकार कई वृक्षों के विषय में वेद में लिखा है ।

अस्तु इस प्रकार वैद्यक विषयक कई विषयों के विषय में वेद में उल्लेख आया है—जिसका दिग्दर्शन करना भी एक बड़ा भारी ग्रंथ लिखने के समान बड़े आयास का काम है।

एक वर्ष हुवा मैंने वेदके वैद्यशास्त्र का अभ्यास प्रारंभ किया है यद्यपि वैद्यशास्त्र का विषय मेरा नहीं, तथा मेरी गति भी इस विषय में बहुत सी नहीं तथापि इस विषय की खोज में एक वर्ष से मेरी रुची होगयी. और मैं इस विषयका विचार करता रहा. इस समय तक मेरे पास आठसौं से अधिक मंत्र उपस्थित है कि जिन में वैद्यशास्त्र के विषय के अद्भुत सिद्धांत लिखे हुवे प्रतीत होते हैं अन्य भी सैंकड़ों मंत्र होगें जो मैने न देखे हों अथवा मेरे समझ में न आय हो.

अगर कोई बिद्वान् वैद्य इन मंत्रों का निरीक्षण करेगा, और विचार पूर्वक संगति लगावेगा तो लोकों के ऊपर बड़ा भारी उपकार हो सकता है, मैं यथा मति इन मंत्रों की संगति लगा रहा हूं. और इन मंत्रों के संग्रह को लोकों के सन्मुख रखने की मैं इच्छा कर रहा हूं. परंतु कितने समय का यह काम है इसका निश्चय इस समय तक नहीं हुवा है.

अस्तु. अंत में इस महान तथा गंभीर विषय की ओर विद्वान वैद्योंने अपनी दृष्टी डालनी चाहीये ऐसी उनकी सविनय नम्र विनति करके मैं इस अल्प निबंध को समाप्त करता हूं.

ओ३म् शांतिः ३ ॥

गुरुकुलीय साहित्य परिषद्
सरस्वती सम्मेलन ।

गुरुकुलीय साहित्य परिषद् के प्रतिपक्ष अधिवेशन होते हैं, और साथ ही गुरुकुलकांगड़ी के वार्षिकोत्सव के साथ इस का वार्षिक सरस्वती सम्मेलन भी होता है, जिस में भिन्न २ प्रान्तों के प्रसिद्ध विद्वान् एकत्रित हो कर निबन्धादिक पढ़ते हैं,कुछ पढ़े गये निबन्ध छप कर भी तय्यार हैं, और गुरुकुलकांगड़ी हरिद्वार से मिल सकते हैं, अभी तक निम्नलिखित छप चुके हैं ।

प्रथम वार्षिक वृत्तान्तः—

१—संस्कृत साहित्यस्य वर्त्तमानदशा,—
श्री पं० अखिलानन्द जी शर्म्मा

२—षड्दर्शन विरोधाविरोध विचारः
श्री पं० शिवशङ्कर जी काव्य तीर्थ

३—षड्दर्शनी धर्म पदयोस्या न वा—
श्री स्नातक इन्द्र चन्द्र जी वेदा लङ्कार......=)

द्वितीय वार्षिक वृत्तान्तः—

१—उपनिषदों में मायावाद है या नहीं—
श्री पं० आर्य्यमुनि जी प्रो० डि० ए० वि० कालेज

२—यास्कीयाः सिद्धन्ता आर्य्यमतानुकूला नवा
श्री म० जयचन्द जी

३—वर्णव्यवस्था तथा—समाजवाद (Socialism)
श्री पं० घासीराम जी

तृतीय वार्षिक वृत्तान्त;—

१—विषय प्रतिपादनस्य वैदिकी शैली—
श्री पं० सातवलेकर जी

२. मुक्ति

श्री पं० आर्य्यमुनि जी

संस्कृत साहित्य विमर्श

श्री स्नातक हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार ।-)

चतुर्थ वार्षिक वृत्तान्तः—

१—सभापते रभिभाषणम्

श्री पं० विधुशेखर जी भट्टाचार्य्य

२—आर्य्याणां सभ्यता

श्री ब्र० ब्रह्मदत्त जी गुरुकुल कांगड़ी

३—क्या बुद्धदेव नास्तिक थे—

श्री म० जगन्मोहन जी वर्म्मा

४—ब्रह्मणा लोचनम्

श्री पं० केशवदेव शास्त्री

५—वेदार्थ करने का प्रकार

श्री स्नातक इन्द्रचन्द्र जी वेदालङ्कार ॥)

पञ्चम वर्षः—

१—मांस मीमांसा

श्री ब्र० ब्रह्मदत्त जी... ... .≡)

२—वैदिक देवता स्वरूप

श्री पं० सातवलेकर जी, श्री पं० जगन्नाथ,

निरुक्त रत्न; स्नातक इन्द्रचन्द्र जी वेदालङ्कार ≡)

षष्ट वर्षः—

१—वैदिक रोगजन्तु शास्त्र

श्री पं० सातवलेकर जी...... ... ...-)॥

४—सभापते रभिभाषणम

श्री पं० सत्येन्द्रनाथ सेन विद्या वागीश एम० ए०

५—भारत शिक्षादर्श

श्री घनश्याम सिंह गुप्त

६—वेदों का अनादित्व

श्री प्रो० गोवर्धन जी,

पुस्तक मिलने का पता:—

मन्त्री. साहित्य परिषद

गुरुकुल काङ्गड़ी

हरिद्वार